जैन छन्दशास्त्र परम्परा

☐ **श्री नरोत्तम नारायण गौतम,** व्याख्याता—साहित्य, महाराणा संस्कृत महाविद्यालय, उदयपुर

प्राचीन मनीषियों को "साहित्यपाथोनिधिमंथनोत्थं कर्णामृतं रक्षत हि कवीन्द्रा" कहकर साहित्य की सुरक्षा की सलाह देते समय कवि को मानवों की स्मृति पर विश्वास करना पड़ा होगा। स्मृति में किसी भी विद्या को सुरक्षित रखने के लिए उसे रागात्मक, आल्हादक तत्त्वों से संयुक्त करना आवश्यक था। प्रत्येक प्राचीन विधा इसीलिए स्वर, यति, राग एवं छन्दों से किसी न किसी प्रकार बँधी रही है। सम्भवतः भीषण झझावातों के पश्चात् भी इसी आल्हाद देने वाले स्वरों में बँधी रचनाधर्मिता के कारण यह विद्या सुरक्षित रह पायी। वेद विश्वसाहित्य की प्राचीनतम कृति हैं। स्मृति पर सुरक्षित इन वेदों के विश्लेषण एवं गम्भीर ज्ञान के लिए उपयोगी विधाओं में छन्दविद्या को भी स्थान दिया गया। वेद को पुरुष का रूपक बतलाते हुए कहा गया है कि "छन्दः पादौ तु वेदस्या।"

पाणिनी ने छन्द शब्द को आल्हाद या प्रसन्नता के अर्थ में प्रयुक्त 'चदि' धातु से निर्मित माना है जिसका अर्थ है—मन को प्रसन्न करने वाला। मन के भावों को भाषा, स्वर, लय, यति, गति से आवृत कर प्रस्तुत करने के कारण छन्द शब्द को छादन छाने, ढकने अर्थ की धातु से भी निष्पन्न किया गया है। इसी तत्त्व को समझने के लिए ब्रह्महत्या के दोषी इन्द्र की पाप (सं मानसिक सन्ताप) से रक्षा करने की कथा भी जोड़ी गई। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि छन्द का अर्थ अक्षर, मात्रा, यति, लय आदि के नियमों से निबद्ध रचना होती है, जिसके सुनने से मन में प्रसन्नता का संचार होता है।

छन्दों के विश्लेषण का प्रारम्भ वेदों से ही प्रारम्भ हो गया था। शुक्ल यजुर्वेद के निम्न मन्त्र में वेदों में प्रयुक्त छन्दों का परिगणन किया गया है—

गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह।
बृहत्युष्णिहा ककुप्पसूचीथिः शम्मयन्तुत्त्वा॥

कालिदास का श्रुतबोध एवं भट्ट केदार के वृत्तरत्नाकर के समान ही जैन आचार्यों ने भी छन्द शास्त्र के अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। उनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—

रत्न मंजूषा—आठ अध्यायों में विभक्त २३० सूत्रों की इस मंजुषा के कर्ता का नाम भूत के गर्भ में विलीन हो गया है। इसकी टीकाओं के अधिकांश लेखकों के जैन होने तथा हेमचन्द्रसूरि के अतिरिक्त अन्य छन्दशास्त्रियों से विवरण मेल न खाने के कारण इसके रचयिता के जैन होने की सम्भावना प्रबल है।

इसके प्रथम अध्याय में विविध पारिभाषिक शब्दों का परिचय है। द्वितीय-तृतीय अध्याय में मात्रिक छन्द, चतुर्थ में विषम वृत्त, पंचम से सप्तम में वर्णवृत्त (वार्णिक छन्द) तथा आठवें अध्याय में प्रस्तार का निरूपण है। कवि ने गणों की परम्परा से हटकर अलग संज्ञाएँ प्रदान की हैं। बहुप्रचलित य, म, र, स, त, ज, य गण के स्थान पर क, च, द, त, प, श, ष, म, ह तथा संख्याओं के लिए द, दा, दि, दी आदि वर्णों का प्रयोग कवि की अपनी मौलिकता प्रदर्शित करता है।

कवि की कृति पर किन्हीं पुन्नागचन्द्र अथवा नागचन्द्र नामक जैन विद्वान ने टीका भी लिखी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छन्दोऽनुशासन—कन्नड़ प्रदेश के निवासी दिगम्बर आचार्य जयकीर्ति ने इस ग्रंथ की रचना की। कृति में आचार्य असंग के उल्लेख से ज्ञात होता है कि आपका समय लगभग १००० ई० के आसपास रहा होगा।

छन्दोऽनुशासन के आठों अध्यायों में क्रमशः संज्ञा, समवृत्त, अर्धसमवृत्त, विषमवृत्त, जाति (मात्रिक छन्द), मिश्र, कन्नड़ के छन्द, एवं प्रस्ताव निरूपित हैं।

इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषतां वैदिक छन्दों के निरूपण के स्थान पर लोकभाषा कन्नड़ के छन्दों का निरूपण है। अनेक स्थलों पर कवि ने नये नामों का भी प्रयोग किया है। कवि ने प्रायः सभी लक्षणों को उसी छन्द में देने का प्रयास किया है ताकि पृथकशः उदाहरण देने की आवश्यकता न पड़े।

छन्दःशेखर—ठक्कुर दुद्दक एवं नागदेवी के पुत्र राजशेखर ने इस ग्रन्थ की रचना की। इसकी प्राचीनतम प्रति वि० सं० ११७९ की मिली है। हेमचन्द्राचार्य ने इस कृति का उपयोग अपने ग्रन्थ में किया है।

छन्दोऽनुशासन— षड्भाषा चक्रवर्ती आचार्य हेमचन्द्र ने जहाँ काव्य, व्याकरण एवं कोशों पर अपनी लेखनी चलाई, वहीं छन्दशास्त्र सम्बन्धी इस ग्रन्थ का प्रणयन भी किया। इसमें न केवल संस्कृत के अपितु प्राकृत, अपभ्रंश के छन्दों का वर्णन भी विस्तार के साथ किया है। आठ अध्यायों में विभक्त इस छन्दशास्त्रीय ग्रन्थ में चतुर्थ अध्याय में प्राकृत तथा पंचम से सप्तम तक के तीन अध्यायों में अपभ्रंश साहित्य में बहुप्रयुक्त छन्दों का विवरण मिलता है। शेष प्रथम में संज्ञा, द्वितीय में संस्कृत के समवृत्त एवं दण्डक तथा तृतीय में अर्धसम एवं विषम छन्दों का वर्णन प्राप्त होता है।

आचार्य हेमचन्द्र को छन्दों के बहुत से नये प्रकरणों का ज्ञान था। दण्डक का विवरण देते हुए आपने ४११ विषम छन्दों में ७२ छन्दों का वर्णन किया है। उनके इस ग्रन्थ में कुल मिलाकर ८०० छन्दों का निरूपण है, जो अपने आप में बहुत बड़ी संख्या है। छन्दों के विषय में इतनी सुगम एवं विविधतापूर्ण कृति अन्यत्र दुर्लभ है। इस कृति पर स्वयं आचार्य हेमचन्द्र ने ही स्वोपज्ञ अथवा छन्दश्चूड़ामणि नाम से टीका लिखी। इस टीका में भरत, सैतव, पिंगल, जयदेव, काश्यप, स्वयंभू, सिद्धसेन, सिद्धराज कुमारपाल आदि का उल्लेख है।

छन्दोरत्नावली—गुर्जर नरेश बीसलदेव की सभा के रत्न अमरचन्द्रसूरी जिनदत्तसूरी के शिष्य थे। अनेक ग्रंथों के रचयिता अमरचन्द्रसूरी ने ६०० श्लोकों में इस कृति की रचना की।

इस कृति में नौ अध्याय हैं। अपने पूर्वाचार्यों की भाँति इन्होंने भी अपनी कृति में प्राकृत छन्दों का विश्लेषण किया है। अद्यावधि अप्रकाशित इस ग्रंथ के प्रकाशन से शोधार्थियों को जानकारी प्राप्त होगी।

छन्दोऽनुशासन—मेदपाट (मेवाड़) के जैन श्रेष्ठी नेमिकुमार के पुत्र महाकवि वाग्भट्ट ने १४वीं शती में इस ग्रंथ की रचना की। इसके पाँच अध्यायों में क्रमशः संज्ञा, समवृत्त, अर्धसमवृत्त, मात्रासमक एवं मात्रिक छन्दों का विवेचन है।

वृत्तमौक्तिक—व्याकरण, काव्य, ज्योतिष, दर्शन एवं आध्यात्म की बहुमुखी प्रतिभाशाली उपाध्याय मेघविजय ने इस ग्रंथ की रचना की। १० पत्रों की इस लघुकाय कृति में कवि ने प्रस्तार संख्या, उद्दिष्ट, नष्ट आदि विषयों का विशद विवेचन तथा उपयोगी यंत्र (चार्टस) का निर्माण भी किया है। ऐसी मान्यता है कि सं० १७५५ में इस ग्रंथ की रचना भानुविजय के लिए की गई।

समित्यर्थाश्वभू वर्षे प्रौढिरेषाऽभवत् श्रिये।
भान्वादिविजयाध्यायहेतुतः सिद्धिमाश्रितः॥

छन्दोऽवतंस—केदार भट्ट के वृत्तरत्नाकार की शैली पर रचित इस रचना के प्रणेता उपाध्याय लालचन्द्रगणि हैं। संस्कृत भाषा में रचित इस ग्रंथ में अति उपयोगी छन्दों का विशद विश्लेषण कर शेष पर चलती दृष्टि डाली है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि० सं० १७११ में रचित इस कृति के अन्त में विनयशील उपाध्याय ने विद्वानों से त्रुटियों के शोधन की प्रार्थना भी की है—

क्वचिद् प्रमादाद् वितथं मयास्मिश्छन्दोऽवतंसे स्वकृते यदुक्तम् ।
संशोध्य तन्निर्मलयन्तु सन्तः विद्वत्सु विज्ञप्तिरियं मदीया ॥

जयदेवछन्दस्—वृत्तरत्नाकर के टीकाकार सुल्हण ने "श्वेतपट" विशेषण लगाकर कवि जयदेव के श्वेताम्बर सम्प्रदाय के होने की सम्भावना उत्पन्न कर दी है। इस ग्रन्थ के रचयिता कवि जयदेव ने वर्धमान को नमस्कार कर जैन होने का अन्तःसाक्ष्य भी दिया है।

जयदेव ने अपना ग्रंथ जयदेवछन्दस् पिंगल शिरोमणि को आधार मानकर बनाया। आठ अध्यायों में विभक्त यह प्रथम जैन काव्य है, जिसमें वैदिक छन्दों का विवेचन हुआ है। इस ग्रंथ में वैदिक एवं लौकिक संस्कृत के छन्दों का ही विवेचन है। प्रारम्भ एवं अन्त भी पिंगल से प्रभावित है किन्तु लौकिक छन्दों के निरूपण में उनकी शैली पिंगल से भिन्न हो गयी है। स्वयंभू एवं हलायुध ने जयदेव के मत की समीक्षा की है। अभिनवगुप्त, नमि साधु, हेमचन्द्र, त्रिविक्रम, अमरचन्द्र, सुल्हण, गोपाल, नारायण, रामचन्द्र आदि साहित्यशास्त्रियों ने जयदेव के अवतरणों को अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है। इससे प्रतीत होता है कि जयदेव की कृति का सम्मान एवं उपयोग सभी जैन, जैनेतर काव्यशास्त्रियों ने निःसंकोच किया। कविकृति की प्रामाणिकता एवं लोकप्रियता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या होगा ?

मुकुल भट्ट के पुत्र हर्षट ने इस कृति पर जयदेवछन्दोवृत्ति नाम से टीका लिखी। इस वृत्ति के ३०० वर्षों के पश्चात् शीलभद्रसूरि के शिष्य चन्द्रसूरी ने १३वीं शती में जयदेवछन्दशास्त्रवृत्ति टिप्पन के नाम से टिप्पणियाँ कीं, जो संभवतः हर्षट की वृत्ति पर ही है।

स्वयंभूच्छन्दस्—हरिवंशपुराण (जैन), पउमचरिउ तथा इस कृति के रचयिता स्वयंभू एक ही थे या भिन्न-भिन्न इस विषय पर मतैक्य नहीं है। पउमचरिय में विद्यमान इस कृति के अवतरणों को एक ही कवि की कृति मानने से कवि की एकता मानें तो स्वयंभू माउरदेव ब्राह्मण के पुत्र एवं त्रिभुवन के पिता हैं।

आठ अध्यायों में विभक्त इस कृति के प्रथम अध्याय के कुछ पत्र अप्राप्य हैं। द्वितीय अध्याय में अर्धसम तथा तृतीय अध्याय में विषम छन्दों का वर्णन है। चतुर्थ से अष्टम तक अपभ्रंश के छन्दों की चर्चा है। कवि ने संस्कृत छन्दों को भी प्राकृत में प्रयुक्त कर उनके उदाहरण प्राकृत रचनाओं से दिये हैं।

वृत्तजातिसमुच्चय—प्राकृत पद्यों में रची हुई इस रचना के नामान्तर कवि सिट्ठ, कृतसिद्ध एवं छन्दोविचित भी है। इसके रचयिता विरहांक या विरहलांछन है। सिद्धहेमव्याकरण में इसमें प्रयुक्त दो प्राकृत पद्यों को उद्धृत किया गया है जो इसकी प्रामाणिकता की कसौटी हैं।

यह ग्रन्थ छः नियमों में विभक्त है। पाँचवें नियम को छोड़कर शेष पाँच नियमों में प्राकृत छन्दों का ही विश्लेषण है। पाँचवें नियम में संस्कृत छन्द हैं। छठे नियम में एक कोष्ठक में दूरियों का मान दिया है, जो इस प्रकार है—

४ अंगुल = १ राम, ३ राम = १ वितस्ति, २ वितस्ति = १ हाथ, २ हाथ = १ धनुर्धर, २००० धनुर्धर = १ कोश, ८ कोश = १ योजन।

इस ग्रन्थ पर वृत्ति नाम से चक्रपाल के पुत्र गोपाल ने टीका लिखी है, जिसमें कात्यायन, भरत, कम्बल और अश्वतर का स्मरण है।

छन्दःकोश—रत्नशेखरसूरि द्वारा रचित इस रचना में कुल ७४ पद्य हैं। प्राकृत भाषा में निबद्ध इस कृति में ५ से ५० तक के पद्य अपभ्रंश भाषा में लिखे गये हैं। प्राकृत छन्दों के लक्षण विस्तार से दिये हैं। इस कृति पर चन्द्रकीर्तिसूरि ने वृत्ति एवं अमरकीर्तिसूरि ने बालावबोध नामक टीका की। इस ग्रन्थ को आधार बनाकर छन्दकदली एवं छन्दस्तत्व की भी रचना हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनेतर छन्द ग्रन्थों पर टीकायें

जैन कवियों ने उपर्युक्त ग्रन्थों पर तो टीकाएँ लिखी ही हैं, साथ ही संस्कृत साहित्य में समादृत अन्य कवियों की छन्द सम्बन्धी रचनाओं पर भी उनकी लेखनी चली है। उनमें से प्रमुख निम्न हैं—

छन्दोविद्या—इस ग्रन्थ के रचयिता कवि राजमल्ल थे। छन्दशास्त्र पर इनका असाधारण अधिकार था। इनका जन्म १६वीं शताब्दी में माना जाता है। यह अपने ढंग का अनूठा ग्रन्थ है। यह संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी में निबद्ध है। इसमें ८ से ६४ पद्यों में छन्दशास्त्र के नियम-उपनियम बताये गये हैं। यह ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है। कवि राजमल्ल ने (१) लाटी संहिता, (२) जम्बूस्वामीचरित, (३) अध्यात्मकमल-मार्तण्ड एवं (४) पंचाध्यायी की रचना की है।

पिंगलशिरोमणि—पिंगलशिरोमणि नामक छन्द विषयक ग्रन्थ की रचना मुनि कुशललाभ ने की है। इस ग्रन्थ की रचना का समय वि० सं० १५७५ बताया गया है। आठ अध्याय में विभक्त इस ग्रन्थ में अधोलिखित विषय वर्गीकृत हैं—

(१) वर्णविर्णछन्दसंज्ञाकथन (२-३) छन्दोनिरूपण (४) मात्राप्रकरण (५) वर्णप्रस्तार (६) अलंकारवर्णन (७) डिङ्गलनाममाला और (८) गीत प्रकरण।

आर्यासंख्या उद्दिष्ट नष्ट वर्तन विधि—उपाध्याय समयसुन्दर ने इस ग्रन्थ की रचना की है। इसमें आर्याछन्द की संख्या और उद्दिष्ट नष्ट विषयों की चर्चा की है। इसका आरम्भ इस प्रकार है—

जगणविहीना विषमे चत्वारः पंचयुजि चतुर्मात्रा।
द्वौ वष्ठाविति चगणास्तद्धातात् प्रथमदलसंख्या॥

१७वीं शताब्दी में विद्यमान उपाध्याय समयसुन्दर ने संस्कृत और जूनी गुजराती में अनेक ग्रन्थों की रचना की है।

श्रुतबोध—कुछ विद्वान् 'श्रुतबोध' के कर्त्ता वररुचि को और कुछ कालिदास को मानते हैं। यह शीघ्र ही कंठस्थ हो सके ऐसी सरल और उपयोगी ४४ पद्यों की छोटी-सी कृति अपनी पत्नी को सम्बोधित करके लिखी गयी है। छन्दों के लक्षण उन्हीं छन्दों में दिये गये हैं, जिनके वे लक्षण हैं। इसमें आठ गणों एवं गुरु लघु वर्णों के लक्षण को बताकर आर्या आदि छन्दों से प्रारम्भ कर यति का निर्देश करते हुए समवृत्तों के लक्षण बताये हैं।

इस कृति पर हर्षकीर्तिसूरि ने विक्रम की १७वीं शताब्दी में वृत्ति की रचना की है। टीका के अन्त में वृत्तिकार ने इस प्रकार परिचय दिया है—

श्रीमन्नागपुरीयपूर्वकतपागच्छाम्बुजाहस्कराः
सूरीन्द्राः [चन्द्र] कीर्तिगुरुवौविश्वत्रयीविश्रुताः।
तत्पादाम्बुसहप्रसादपदलः श्रीहर्षकीर्त्याह्वयो—
पाध्यायः श्रुतबोध वृत्तिमकरोद् बालावबोधाय वै॥

वृत्तरत्नाकर—छन्दशिरोमणि केदार भट्ट ने इस ग्रन्थ की रचना सन् १००० के आस-पास की है। यह कृति (१) संज्ञा (२) मात्रासूत्र (३) समवृत्त (४) अर्धसमवृत्त (५) विषमवृत्त और (६) प्रस्तार, इन छः अध्यायों में विभक्त है।

इस पर जैन लेखकों ने निम्नलिखित टीकाएँ की हैं—

(१) आसड नामक कवि ने वृत्तरत्नाकर पर 'उपाध्यायनिरपेक्षा' नामक वृत्ति की रचना की है।

(२) सोमचन्द्रगणि ने वि० सं० १३२६ में वृत्तरत्नाकर पर वृत्ति की रचना की थी। इसमें उन्होंने आचार्य हेमचन्द्र के छन्दोऽनुशासन पर स्वोपज्ञ वृत्ति के उदाहरण लिये हैं। टीकाकार ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बादी श्री देवसूरिर्गणगगनविधौ विभ्रतः शारदायाः,
नाम प्रत्यक्षपूर्वं सुजयपदभृतौ मङ्गलाह्वस्य सूरेः।
पादद्वन्द्वा रविन्देऽम्बुमधुपहिते भृंग भृंगी दधानो,
वृत्तिं सोभोऽभिरामामकृत कृतिभृतां वृतरत्नाकरस्य ॥

(३)मुनि क्षेमहंस ने इस पर टिप्पन की रचना की है। ये वि० १५वीं शताब्दी में विद्यमान थे।

(४) अमरकीर्ति और उनके शिष्य यशकीर्ति ने इस पर वृत्ति की रचना की है।

(५) मेरूसुन्दरसूरि ने इस पर बालावबोध की रचना की है। ये १६वीं शताब्दी में विद्यमान थे।

(६) उपाध्याय समयसुन्दरगणि ने इस वृत्ति की रचना वि० सं० १६६४ में की है। इसके अन्त में वृत्तिकार ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

वृत्तरत्नाकरे वृत्तिं गणिः समयसुन्दरः।
षष्ठाध्यायस्य संबद्धा पूर्णीचक्रे प्रयत्नतः ॥ १ ॥
संवति विधिमुखः निधि-रस शशिसंख्ये दीपपर्व दिवसे च।
जालोरनामनगरे लुणिया कसलार्पितस्थाने ॥ २ ॥
श्रीमत् खरतरगच्छे श्री जिनचन्द्रसूरयः।
तेषां सकलचन्द्राख्यो विनेयो प्रथमोऽभवत् ॥ ३ ॥
तच्छिष्यसमयसुन्दरः सत्तां वृत्तिं चकार सुगतराम्।
श्रीजिनसागरसूरिप्रवरे गच्छाधिराजेऽस्मिन् ॥ ४ ॥

इस प्रकार अन्यान्य ग्रन्थों में भी छन्द विषयक रचनाएँ अपूर्ण रूप से मिलती हैं। इस विषय पर अभी शोध की आवश्यकता है, जिससे कि जैन साहित्य पल्लवित एवं पुष्पित हो सके।

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org